International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(4): 11-12

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(4): 11-12
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 21-03-2015
Accepted: 17-04-2015

विकास शर्मा
शोध छात्र (पीएच.डी.) संस्कृतविभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

Correspondence
विकास शर्मा
शोध छात्र (पीएच.डी.) संस्कृतविभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

शिक्षा व नैतिकता – पाणिनीय संदर्भ में

विकास शर्मा

वेद, अनन्त ज्ञान एवं विज्ञान के अक्षय कोष हैं। इनमें विश्वजनीन संस्कृति एवं सभ्यता का इतिहास भी समाहित है। वेद के गूढ़ार्थ को समझने के लिए उसके छः अंगों सहित ब्राह्मण, उपनिषद्, प्रातिशाख्य, स्मृतिग्रन्थ एवं पुराणों का गंभीर एवं विशद अध्ययन नितान्त आवश्यक है क्योंकि इसके विशद ज्ञानार्जन के पश्चात ही वेद प्रतिपादित विषयों को यथार्थ रूप से समझने की विशुद्ध दृष्टि प्राप्त होती है। यह विशुद्ध दृष्टि ही सुवर्णमय पात्र के सम्पुट में विद्यमान सत्यार्थ का साक्षात्कार करने में समर्थ होती है।

व्याकरण महाभाष्य के प्रणेता पतंजलि मुनि ने षडंग वेदाध्ययन की अनिवार्यता प्रतिपादित करते हुए यह कहा है कि ब्राह्मण को तो दृष्टफल की अपेक्षा किए बिना अभ्युदय एवं निःश्रेयस के साधक षडंग शास्त्रों सहित वेद का (शब्दतः) अध्ययन और (अर्थतः) ज्ञान प्राप्त करना चाहिए –

''ब्राह्मणेन निष्कारणों धर्मः षडंगों वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।''
– महाभाष्य–1/1

इन षडंग रूप वेदांगों के वैशिष्ट्य को हृदयंगम करके पाणिनीय शिक्षाकार ने कहा है –

''छन्दः पादौ तु वेदस्य, हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरूक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।
(पा.शि.–41, 42)

वेद के इस षडंगता के प्रतिपादन का मौलिक उद्देश्य वेदार्थज्ञान ही है। इसमें भी शिक्षा नामक वेदांग के अध्ययन की अनिवार्यता के संदर्भ में संक्षिप्त रूप से इस प्रकार चर्चा की जा सकती है।

शिक्षा की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा

'शिक्षणं शिक्षा' व्युत्पत्ति के आधार पर **शिक्ष्–अभ्यासे** धातु से **'गुरोश्च हलः'** सूत्र से **'अ'** प्रत्यय तथा स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् प्रत्यय करके 'शिक्षा' शब्द निष्पन्न होता है।

आचार्य सायण ने ऋग्वेद–भाष्य–भूमिका में शिक्षा वेदांग को परिभाषित करते हुए लिखा है –

''स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते सा शिक्षा''

अर्थात् उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों तथा वर्णोच्चारण की विधि जिस शास्त्र में दिखाई जाती है – उसे 'शिक्षा' कहते हैं।

पाणिनि की दृष्टि में शिक्षा का विशिष्ट महत्त्व है। शिक्षा के आधार के विषय में सर्वप्रथम पाणिनि ने पद की सूक्ष्मतम ध्वनि वर्ण का उल्लेख किया है। वर्णन का नाम ही अक्षर है। वर्णज्ञान, वाणी का विषय है। वाणी से उच्चारण करके ही आचार्य परम्परा, अनादिकाल से अकारादि वर्णों का उपदेश करते आये हैं। वर्णज्ञान के द्वारा ही वर्णराशि शब्दब्रह्म का बोधक होता है। वेद तथा अन्य शास्त्रों का विधिवत् उच्चारण व ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी प्रथमतः वर्णज्ञान अपेक्षित है।

समुचित क्रम से वर्णों के योग से शब्द रचना होती है। इसे आचार्यों ने वर्णयोग कहा है। वर्ण की उत्पत्ति भी एक प्रकार का योग है। जो योग, आत्मा का बुद्धि और मन के साथ, मन का उदरस्थिति अग्नि के साथ, उदरस्थित अग्नि हृदय स्थित प्राण वायु के साथ योग करके स्वर को उत्पन्न करते हैं।

इस सन्दर्भ में प्राणवायु के साथ–साथ आचार्य ने आत्मा, बुद्धि एवं मन का योगदान स्पष्टतया प्रतिपादित करते हुए लिखा है –

"आत्मा बुद्धया समेत्यार्थान्, मनो युङक्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति, स प्रेरयति मारूतम्।।
मारूतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम्। पा.शि.–6, 7

आत्मा, बुद्धि की सहायता से अर्थों का निश्चय करती हुई उनके कथन की इच्छा से मन को नियुक्त करती है। यह मन जब शरीरस्थ अग्नि पर आघात करता है, उस समय वह आहत अग्नि वायु को प्रेरित करती है। प्राणवायु उस स्थल में आहत होकर मन्द स्वर को उत्पन्न करता है।

शिक्षा का स्वरूप

आचार्य पाणिनि ने शम्भुमत (माहेश्वर मत) में तिरसठ या चौंसठ वर्ण गिनाये हैं –

त्रिषष्टिश्चतुः षष्टिर्वा, वर्णाः शम्भुमते मताः।
प्राकृते संस्कृते चापि, स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा।।
पा.शि. 3

पाणिनीय शिक्षा के श्लोक संख्या 6, 7, 17, 21, एवं 25 में वर्णोत्पत्ति प्रक्रिया के संदर्भ में विशद प्रकाश डाला गया है। अक्षरों के उच्चारण में कण्ठ, मूर्धा, तालु, जिह्वामूल, नासिका, ओष्ठ, दन्त आदि स्थानों के विषय में विस्तार से वर्णन किया गया है।

पाणिनीय शिक्षा में उच्चारण संबंधी अष्टादश दोषों का वर्णन प्राप्त होता है। उच्चारण के समय उच्चारयिता को 18 दोषों से सदैव बचना चाहिए।

उच्चारण एक कला है। उच्चारण सम्बन्धी गुणों को पाठक या उच्चारण कर्ता के गुणों के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। उच्चारण गुणों के संदर्भ में पाणिनीय शिक्षा में माधुर्य, अक्षरव्यक्ति, पदच्छेद, सुस्वर, धैर्य और लयसामर्थ्य ये छह गुण उत्तम पाठकों के गिनाये गए हैं।

पाणिनीय शिक्षा में नैतिकता

स्वरादि वर्णों का स्थान, स्थान एवं प्रयत्न की दृष्टि से साधु उच्चारण ही नैतिकता है। इसमें विकार आ जाने से उच्चारण कर्त्ता न केवल इस फल से वंचित हो जाता है अपितु अनिष्टफलभाक् भी होता है।

जिसे पतंजलि ने व्याकरणाध्ययनप्रयोजन में स्पष्ट करते हुए कहा है–

यस्तु प्रयुङक्ते कुशलो विशेषे शब्दान् यथावद् व्यवहारकाले।
सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः।।
तेऽसुराः हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुः, तस्माद् ब्राह्मणेन न मलेच्छितवै नापभाषितवै, मलेच्छो ह वा एष यदपशब्दः...।

– व्याकरणमहाभाष्य पस्पशाह्निक

इस दृष्टि से प्रकृत शास्त्र में शुद्धोच्चारण की जिज्ञासा रखने वाला अधिकारी, साधुशब्दोच्चारण विषय, शब्दज्ञान का बोध्यबोधक अथवा प्रतिपाद्यप्रतिपादक भाव संबंध, शुद्ध शब्दोच्चारणपूर्वक शब्दज्ञान प्रयोजन है।

पाणिनीय शिक्षा में शास्त्रीयविधि के अनुसार शुद्ध वर्णोच्चारण से प्राप्तव्य फल के संदर्भ में स्पष्ट उद्घोषणा करते हुए आचार्य कहते हैं–

वर्णों के उच्चारण में सदैव सावधानी रखनी चाहिए। कभी भी अव्यक्त एवं पीडित उच्चारण नहीं करना चाहिए। शिक्षाशास्त्रोक्त विधि के अनुसार उच्चारण में स्पष्टता एवं मधुरता का समावेश नितान्त अनिवार्य है। यथाविधि वर्णों का सम्यग् उच्चारण करने वाला व्यक्ति ब्रह्मलोक में पूजित एवं महिमामण्डित होता है।

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या, नाव्यक्ता न च पीडिताः।
सम्यग् वर्णप्रयोगेण, ब्रह्मलोके महीयते।। पा.शि. 31

मन्त्र के अर्थ के अवबोध के लिए स्वरों का ज्ञान होना अत्यावश्यक है, यही कारण है कि प्राचीन आचार्यों ने वेदार्थ ज्ञान में स्वरज्ञान की उपयोगिता को समझकर ही शिक्षा नामक वेदाङ्ग की रचना की तथा वेदाङ्गों में भी इसे सर्वोत्कृष्ट माना उनका कथन है कि–

स्वर या वर्ण से रहित मन्त्रों का मिथ्या रूप से प्रयोग किए जाने पर वे यथार्थ कथन नहीं करते हैं। अपितु वे वाणी रूप वज्र बनकर यजमान का उसी प्रकार विनाश कर डालते हैं जिस प्रकार इन्द्रशत्रु (वृत्र) स्वर के अपराध (अशुद्ध उच्चारण) के कारण मारा गया था।

मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।
पा.शि. 52

अष्टाध्यायी में भी पाणिनि ने उच्चैरूदात्तः, नीचैरनुदात्तः, समाहारः, स्वरितः, तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् सदृश संज्ञासूत्रों में वर्णों के उदात्त–अनुदात्त–स्वरित तथा स्थान–प्रयत्न आदि से संबंधित नियमों का निर्देश किया है।– अष्टाध्यायी– 1/2/29–31, 1/1/9

निष्कर्ष यह है कि स्वरादि दोष व्यक्ति को लक्ष्य से च्युत कर देता है अतः इनके समुचित अवबोध हेतु शिक्षा शास्त्र का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। महाभाष्यकार पतंजलि भी सम्यक् ज्ञानपूर्वक सम्यक् प्रयोग करने पर बल देते हैं–

"एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः शास्त्रान्वितः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति।" – व्याकरण महाभाष्य